Artistic Narration Vol. XIV No. 1 Jan.-June 2023 ISSN (P): 0976-7444 (e): 2395-7247
Impact Factor 8.898 (SJIF)

नर्सरी एवं प्राईमरी बाल कला

नीलम कुमारी
शोधार्थी
दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट
दयालबाग, आगरा
ईमेलः neelamkumariagra51@gmail.com

डॉ० मीनाक्षी ठाकुर
विभागाध्यक्ष, ड्राईंग एंड पैंटिंग विभाग
दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट
दयालबाग, आगरा
ईमेलः meenatk19@yahoo.com

Reference to this paper should be made as follows:

नीलम कुमारी,
डॉ० मीनाक्षी ठाकुर

नर्सरी एवं प्राईमरी बाल कला

Artistic Narration 2023,
Vol. XIV, No. 1,
Article No. 9 pp. 65-74

Online available at:
https://anubooks.com/journal/artistic-narration

सारांश

कला को कल्पना के सहयोग से नवीन सृष्टि और आन्तरिक अनुभूति की अभिव्यक्ति करने वाली क्रिया माना जाता है। कला ही है, जिसमें मानव मन में संवेदनाएँ उभारने, प्रवृतियों को ढालने तथा चिन्तन को मोड़ने, अभिरूचि को दिशा देने की अद्भुत क्षमता है। मनोरंजन, सौन्दर्य, प्रवाह, उल्लास न जाने कितने तत्वों से यह परिपूर्ण है, जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है। बालकों के सर्वांगींण विकास हेतु नर्सरी एवं प्राईमरी स्तर पर कला शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि बालकों की कला उसकी स्वतन्त्रता का मार्ग है, उसकी शक्तियों और गुणों के विकास का मार्ग है व यही कला उसके भावी जीवन के आनन्द व सुख का भी मार्ग हैं कला बालक को स्वयं से बाहर निकालती है तथा आत्माभिव्यक्ति का अवसर भी प्रदान करती है। मैं अपने इस शोध पत्र के माध्यम से नर्सरी एवं प्राईमरी बाल कला का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगी।

मुख्य बिन्दु

विवरणात्मक, सूक्ष्म प्रतीक, यर्थाथवाद, लयात्मकता।

नीलम कुमारी, डॉ० मीनाक्षी ठाकुर

मनुष्य जन्म के पश्चात् से ही स्वयं को अभिव्यक्त करना आरम्भ कर देता है। सर्वप्रथम यह अभिव्यक्ति प्रवृतिमूलक इच्छाओं को लेकर होती हैं, जिससे वह संसार में स्वयं की उपस्थिति को दर्शाना चाहता हैं। आदिम भाषा की भाँति सर्वप्रथम वह क्रन्दन (रोता) करता है, एवं भाव मुद्राओं के माध्यम से अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने का प्रयास करता है। ये चेष्टाएँ दो प्रकार की होती हैं– सर्वप्रथम वे जो किसी मौलिक आवश्यकता के कारण होती हैं, जैसे भूख लगना तथा निद्रा आदि। द्वितीय वे जो हर्ष, शोक आदि को व्यक्त करती हैं। इस प्रकार की गतिधियों को हम उपयोग निरपेक्ष प्रतिक्रिया कह सकते हैं।

बालकों द्वारा घर की दीवारों पर कोयला, पेन्सिल अथवा किसी रंग द्वारा कोई आकृति बना देना प्रायः देखा जाता है। कहीं दीवार पर सीमेन्ट के ताजे प्लास्टर पर अंगुली से लहरदार आकृति बनाते हुए चले जाना भी प्रायः देखा गया है। बालक अपने वातावरण से अनुभव प्राप्त करता रहता है। वह रंग, रूप तथा मानवीय भावनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है। वह अपने अनुभवों से उपजे हुए विचारों और कल्पनाओं को मूर्त रूप में व्यक्त करने का प्रयास करता है, रंग और रूप की विचित्रता, अत्यधिक आत्मीयता वाली वस्तु अथवा व्यक्ति, वह वस्तु जिसका उसे अभाव होता है, ये सभी उसके चित्रण के प्रिय विषय होते है। अपनी अभिव्यक्ति को देखने के आनन्द में वह अपने माता–पिता, मित्रों तथा अध्यापकों को सम्मिलित करना चाहता है। बालकों की अभिव्यंजना पूर्णतः वैयक्तिक होती है।

बच्चों द्वारा बनाये गये चित्र व अन्य कलात्मक कार्य, बाल कला कहलाती है। इसे बच्चों की कला के रूप में भी जाना जाता है। बालकों को कला में रूचि होती है, क्योंकि कला उन्हें प्रामाणिक आत्माभिव्यक्ति, विचार तथा भावनाओं को स्वतन्त्रता प्रदान करती है।

19 वीं शताब्दी के अन्त में जब बालकों के व्यक्तित्व का एक विकासशील मानव के रूप में अध्ययन आरम्भ हुआ, तो उनकी कला की महत्वता पर प्रकाश डाला गया। रूसो के विचारानुसार बालकों की अपनी आवश्यकताएँ होती हैं, और उनका मानस उन्हीं के अनुकूल विकसित होता है।

आरम्भ में बालक जिन विषयों का चित्रण करना चाहता है, उनमें आकार की विशालता, रंगों का आकर्षण, गोल आकृतियाँ, विभिन्न पशु–पक्षियों आदि होते हैं, जो बालक के मन पर अमिट छाप अंकित कर देते हैं, बच्चों के सम्मुख अच्छे चित्र बनाने का प्रश्न नहीं रहता है अपितु वे उनके माध्यम से अपनी विभिन्न मानासिक शक्तियों का विकास करते हैं।

शिक्षा जगत् को सिज़ेक की देन अद्वितीय है। "Child Art" शब्द सिज़ेक (1865–1946) का ही गढ़ा हुआ हैं उनसे पहले बच्चें कला कर सकते है, यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

फ्रांस सिज़ेक बहु प्रतिभावान व्यक्ति थे। वह एक ऑस्ट्रियाई चित्रकार, शिक्षक तथा कला शिक्षा के सुधारक थे। सिज़ेक ने ही सर्वप्रथम बाल कला शब्द का प्रयोग किया। इससे

पूर्व बच्चे कला कर सकते हैं, यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। सिज़ेक ने बालक की चित्राकृति में सबसे सुन्दर तथ्य उसकी त्रुटियों को माना है। बालक की कलाकृति में जितनी अधिक त्रुटियाँ होगीं, वह कलाकृति उतनी ही सौन्दर्यपूर्ण होगी। बालक सदैव स्वतन्त्र भाव प्रकाश से कार्य करता है। उसकी कलाकृतियों में वयस्क कलाकार सम्बन्धी किसी भी प्रकार के नियम नीहित नहीं होतें हैं। बालक अपने चित्रों को सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से अंकित करता है तथा स्वयं उसकी व्याख्या करता है।

फ्रांस सिज़ेक के अनुसार, ''बालक की चित्राकृति में सबसे सुन्दर तथ्य उसकी त्रुटियाँ होतीं हैं। बालक की कलाकृति में जितनी अधिक त्रुटियाँ होगीं, वह कलाकृति उतनी ही सौन्दर्यपूर्ण होगी। इसके साथ ही शिक्षक जितना इन त्रुटियों में सुधार करेगा, यह कृति उतनी ही नीरस व बेजान होती जायेंगी।''

कला की समस्याओं के अन्तर्गत बालकों की कला को अभिव्यक्ति का एक सरल और सहज माध्यम तथा जीवन का एक विशेष पक्ष माना गया है। इस कला को अभिव्यंजनावादी आन्दोलन से सर्वाधिक महत्व मिला, जिसने इसके विभिन्न पक्षों को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयत्न किया और भावाभिव्यक्ति की नियम–निरपेक्ष स्वतन्त्रता का उद्घोष किया। बालकों की कला उनकी विभिन्न मानसिक शक्तियों को अभिव्यक्त करने का दृश्य साधन कही जा सकती है। व्यंजना की ये पद्धतियाँ एवं विषय जिनके माध्यम से बालक संसार के प्रति अपनी पहुँच एवं स्थिति व्यक्त करता है, अन्य आयु के मनुष्यों से भिन्न एवं विशिष्ट होतें हैं। यदि एक बार बालक मानसिक दृष्टि से अपना शैशव भूलकर वयस्क बनने का प्रयत्न आरम्भ कर दे, तो उसकी कला बालकों की कला नहीं रहती है। बालकों की कला अनुभवों, समस्याओं तथा वस्तु–निरीक्षण को व्यक्त करने का दृश्य साधन है अतः इसकी तुलना भाषा से की जा सकती है। बालकों की कला, विशेष रूप से रेखाचित्रों, के अनेक लक्ष्य है। साधारणतः बालक कुछ न कुछ बनाना चाहता है। उसे यदि बनाने का अवसर नही मिलता तो वह बिगाड़ने लगता हे। इसे सृजन–वृत्ति के अवरोध से उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया समझनी चाहिये। बालक अपने मस्तिष्क की ही भाँति अपने हाथों का भी प्रयोग करना चाहता हैं। यदि इस वृत्ति का उपयोग नही होता, तो बालक की सर्जक–प्रतिभा नष्ट होने लगती है।

शैशवावस्था के पश्चात् जब बालक बाल्यवस्था में प्रवेश करता है, तो उसका सम्पर्क विद्यालय से होता है, जो उसके मूल आत्म–संस्कार के विकास में सहायक होता है। नर्सरी एवं प्राईमरी स्तर पर बाल कला का विकास विभिन्न अवस्थाओं में होता है, जिसमें उसका कला विकास निम्न स्तर से उच्च स्तर की कला में परिवर्तित हो जाता है।

नर्सरी एवं प्राईमरी शिक्षा में व्यक्तित्व के समस्त पक्षों के विकास के लिए शिक्षाविदों द्वारा प्राथमिक स्तर पर गणित, हिन्दी, कला, अंग्रेजी, पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में रखा गया है। बालकों के सर्वांगींण विकास हेतु नर्सरी एवं प्राईमरी स्तर पर कला शिक्षा का

महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि बालकों की कला उसकी स्वतन्त्रता का मार्ग है, उसकी शक्तियों और गुणों के विकास का मार्ग है व यही कला उसके भावी जीवन के आनन्द व सुख का भी मार्ग हैं कला बालक को स्वयं से बाहर निकालती है तथा आत्माभिव्यक्ति का अवसर भी प्रदान करती है।

बाल कला में एक नई दृष्टि परिलक्षित होती है। जैसे–माता–पिता के लिये यह कला उनके बच्चे की कल्पना का प्रदर्शन करती है, वहीं एक शिक्षक के लिए यही कला एक शिक्षण उपकरण बन जाती है, एक मनोवैज्ञानिक के लिए कला एक बच्चे के व्यवहार व मस्तिष्क को समझने का एक माध्यम होती है तथा एक लाइब्रेरियन के लिए यही कला पुस्तक ज्ञान को बढ़ाने का एक तरीका होता है। साथ ही एक बालक के लिए यही कला मनोरंजन, आत्माभिव्यक्ति तथा निर्णय लेने का एक माध्यम होती है।

बालक अपने अंकन में प्रायः अपने आन्तरिक जीवन, विचार और अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देता है। इस अभिव्यक्ति में भय, आकांक्षा, आशा तथा संघर्ष आदि भावनाऐं होती है। किसी कलाकृति के माध्यम से अपने को अभिव्यक्ति करना बालकों में छोटेपन से ही देखा जा सकता है। एक विद्वान ने इसे "Deeply rooted Creative impulse" कहा है। उसका कहना है कि बिना किसी बाह्य उत्प्रेरणा के बालक सर्जनात्मक कार्य करने में समर्थ रहते हैं, यदि उस प्रतिभा का विकास, स्वतन्त्र होने दिया जाये और उसमें हस्तक्षेप न किया जाऐ। सर्जनात्मक अभिव्यक्ति बालकों का नैसार्गिक गुण है।

बालकों की कला–सष्जन प्रक्रिया में दो तत्व सम्मिलित होते हैं–

1. बौद्धिक योग्यता तथा
2. भावावेश

ये दोनों ही तत्व एक दूसरे से जुड़े होते हैं तथा पृथक नहीं किये जा सकते। बौद्धिक पक्ष बालक के 'जानने' से सम्बन्धित होता है। कलाकृति के निर्माण के अनुभव से बालक यह योग्यता प्राप्त करता है अथवा उसकी शैली तथा तकनीक बनाता है। जब कोई बालक किसी चित्र को संयोजित करता है तब उसमें आकर्षण का कोई केन्द्र स्थापित करने में अपनी बौद्धिक कुशलता का उपयोग करता है।

भावावेश का सम्बन्ध उसकी सहजता, गतिशीलता तथा मौलिकता से है। भावुक बालक अपने चित्र की योजना नही बनाता, वह रूप की अनुभूति करता है और रूप सादृश्य के लिए प्रयत्नशील नही होता हैं। चित्र में उसके लिए सही का निर्णय विचार से नही होता, अपितु भावनाओं से होता है। प्रायः बालक अपने विषयों के प्रति अपनी तीव्र भावात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करतें हैं तथा वे अपने चित्रों में उसी के परिणामस्वरूप कुछ तत्व जोड़ते अथवा घटाते है। एक बच्चे ने पिता के चित्र में कान नही बनाऐ। विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि उसके पिता उसकी बात नहीं सुनते थे तथा उसकी बातों की उपेक्षा करते थे। बालक कभी–कभी भावावेश में अपने चित्रों

के किसी रूप अथवा रंग को अतिरंजित चित्रित कर जाते है। बाल कला का भावात्मक पक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है।

बाल कला विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

बालकों के कला विकास की अवस्थाओं का मानसिक विकास की दृष्टि से सिज़ेक ने निम्नांकित रूप में उल्लेख किया हैः–

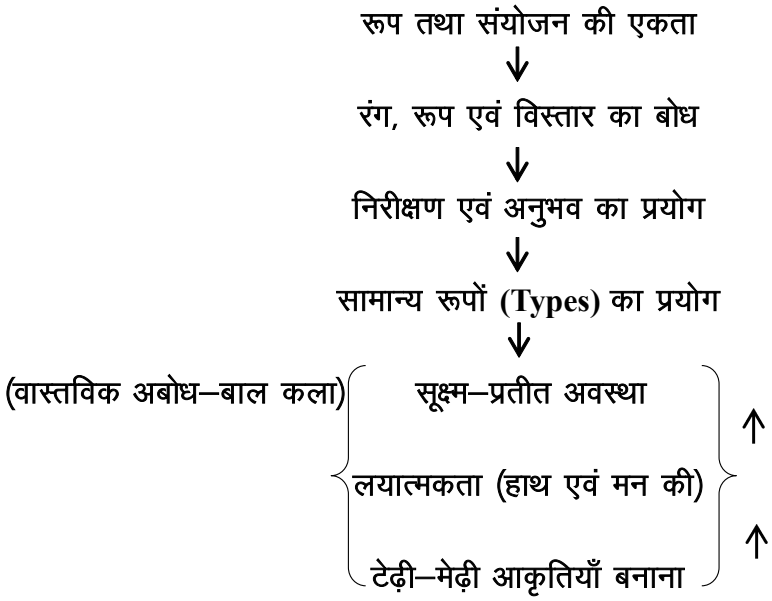

इस क्रम में सबसे ऊपर पूर्ण विकसित और सबसे नीचे आरम्भिक अवस्थाओं को रखा गया है। सिज़ेक ने इनमें आयु की कोई सीमा नही मानी है, क्योंकि विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें सहसा परिवर्तन नही आता। दूसरे, विभिन्न बालकों में व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुसार ये परिवर्तन कम या अधिक आयु में भी हो सकते है। प्रथम तीन अवस्थाएँ बालक की जीवन–शाक्ति के स्त्रोत का प्रस्फुटन है।

प्रथम अवस्था में जो टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएँ खींची जाती है उन्हें न समझने के कारण माता–पिता बच्चों को इस प्रकार का कार्य करने से रोक देते है। बालक के दो वर्ष के हाने से पूर्व ही यह अवस्था आरम्भ हो जाती है। यह अनुकरण वृत्ति न होकर मांसपेशियों का व्यायाम और किंचित आत्माभिव्यक्ति होती है। बालक इस अवस्था में जो आकृतियाँ निर्मित करता है उनके विषय में कोई पूर्व–निश्चय नही व्यक्त करता। हाथ में पेंसिल अथवा तूलिका लेकर अनायास ही चेतन–अचेतन के सहारे यह आकृति का निर्माण करता चलता हैं सम्भवतः वह जो कुछ भी चित्र के द्वारा व्यक्त करता है, उसे भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता हैं ये चित्र पूर्णतः कल्पना–प्रसूत होते है।

चित्र संख्या : 1 टेढ़ी–मेढ़ी रेखाऐं

स्त्रोत : Self clicked

लयात्मकता को बालकला में पुनरावृत्ति के रूप में भी देखा जा सकता है। बालक रेखाओं, आकृतियों तथा रंगों की पुनरावृत्ति करता है। पुनरावृत्ति की धुन में कभी–कभी वह पशुओं के सात–आठ तक पैर अंकित कर देता है।

चित्र संख्या 2 : रेखाओं व आकारों में लयात्मकता

स्त्रोत : https:// thevirtualinstructor.com/blog/the-stages-of-artistic-development

सूक्ष्म प्रतीक आकृतियों में बालक मनुष्य एवं पशु में विशेष भेद नही करते है। कभी–कभी उनकी आकृतियों में ऐसे प्रतीक आ जाते है, जिन्हें वे स्वयं नहीं समझते। वे रंगों का भी प्रतीकात्मक प्रयोग करते है, किन्तु बालकों की सभी आकृतियाँ सदैव–ही इस प्रकार की नहीं होती है।

चित्र संख्या 3 : सूक्ष्म प्रतीकों द्वारा पक्षी व मानव आकृति का अंकन

स्त्रोत : https://www.boycrayons.com

बालकला में सामान्य रूपों का विकास इस बात का घोतक है कि बालक अपनी अबोध शैशवावस्था को छोड़ रहा है, किन्तु ये रूप वयस्क कलाकारों की आकृति योजना के समान नही होते हैं। केवल दूसरों की अनुकृति करने वाले बालक ही पूर्ण योजित चित्र बनाते है। जिन्हें गलत शिक्षा नहीं मिली, ऐसे छात्र सदैव मौलिक रूपों का विकास करते रहते है।

इस स्थिति के उपरान्त बालक क्रमशः प्रकृति के सम्पर्क में आता है। वह अपने चारों ओर के वातावरण का प्रभाव ग्रहण करने लगता है। अनुभवों एवं ज्ञान में वृद्धि होने के कारण वह अपनी आकृतियों में विवरणात्मकता को महत्व देने लगता हैं, चित्रों में यथार्थता का आभास देने का भी प्रयत्न किया जाता है। जिस प्रकार लयात्मक कृतियों की रचना के समय अनेक बालक अलंकारिकता की ओर झुक जाते है, उसी प्रकार इस अवस्था में यथार्थता की प्रवृत्ति भी आती है। कला–विकास की दृष्टि से दोनों ही परिस्थितियाँ हानिकारक है। उचित यह है कि बाल–कलाकार आकृत्तियों की प्रमुख विशेषताओं का अंकन करते हुए रूप, रंग और विस्तार के भेदों के प्रति सजग हो जाये। इस अवस्था में समकोण से न्यूनकोण की ओर बढ़ना अच्छा रहता है।

यह समझना उचित नहीं है कि बालक अपनी पूर्व–कलाकृत्तियों में जो त्रुटि समझता है उसका आगे चलकर परिष्कार कर लेता है, वस्तुतः वह अपनी कृतियों में अधिकाधिक विवरणों का समावेश करना सीखता चलता है। इसी प्रकार यह सोचना भी गलत है कि बालकला में विकास होता है। अपनी पहली अवस्था में बालक जो कृतियाँ बनाता है वे दूसरी अवस्था में बनी कृत्तियों से किसी प्रकार कम नही समझनी चाहिये। दोनो की तुलना केवल मानसिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से ही करनी चाहिये, उच्च तथा निम्न कला–स्तर के विचार से नहीं।

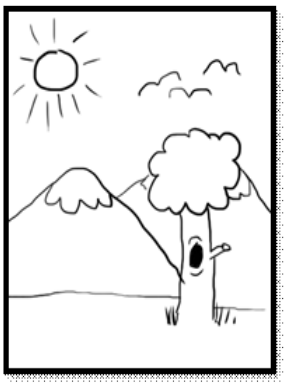

चित्र संख्या 4 : सामान्य रूपों द्वारा प्रकृति चित्रण
स्त्रोत : https://thevirtualinstructor.com/blog/the-stages-of-artistic-development

चित्र संख्या 5 : यर्थाथवादी व्यक्ति चित्र
स्त्रोत : https://thevirtualinstructor.com/blog/the-stages-of-artistic-development

कहा जा सकता है कि बालक पहले कल्पना से कलाकृतियों की रचना करता है, तत्पश्चात् स्मृति एवं प्रकृति से प्रभावित होता है। इस विभिन्न परिस्थितियों के बीच–बीच में स्पष्ट मोड़ नही दिखाई देते है। कभी–कभी दो स्थितियाँ बहुत समय तक साथ–साथ भी चलती है। सभी बच्चे कल्पनाशील नही होते । कुछ जन्म से ही अनुकर्ता होते है। अतः शिक्षक का कार्य उनकी कल्पना को उर्वर और उन्हें मौलिक चेष्टा बनाना है। अनेक बालक ऐसे भी होतें हैं, जो रेखांकन में दुर्बल होते हुए भी रंग भरने, में बड़े कुशल होते है। कुछ बालक मूर्तियाँ बनाने में दक्ष होते है। अतः यह उचित नही है कि सभी बालकों को एक ही माध्यम में निपुण बनाने का प्रयत्न किया जाये।

बालक जो कुछ देखता है उसे प्रस्तुत नही करता, बल्कि जो जानता है उसे प्रस्तुत करता है। वह अपने ज्ञान में से चयन भी करता है। उसमें कलात्मक प्रयत्नाघव भी होता है। बालक प्रकृति को यथार्थ रूप में कभी प्रस्तुत नही करना चाहता है। वह घर नीला, वृक्ष लाला और आकाश नारंगी चित्रित कर सकता है।

सर सायरिल बर्ट ने बाल कला का विकास निम्नलिखित स्थितियों में माना हैः–

1– **टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएँ (Scribble)**:– यह स्थिति प्रायः दो से पाँच वर्ष तक रहती है। इसका चरम स्वरूप तीन वर्ष की आयु में देखा जा सकता है। इसके निम्न उपभेद हैः–

(क) **लक्ष्यहीन रेखांकन**:– प्रायः कन्धे की मांसपेशियों की गति को प्रस्तुत करने में बालक दाँये से बाँये अथवा विपरीत क्रम में पैन्सिल धिसता है।

(ख) **संलक्ष्य रेखांकन**:– इस स्थिति में बालक का ध्यान पैन्सिल से बनने वाली रेखाओं पर रहता है।

(ग) **अनकृति रेखांकन**:– वयस्कों की देखा–देखी बालक कलाई तथा अंगुलियों की गति को नियमित करने का प्रयत्न करता है।

(घ) **वस्तु के विशिष्ट भाग का अंकन**:– इस स्थिति में बालक किसी पदार्थ के एक निश्चित भाग को अभ्यस्त रेखाओं द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है।

1. रेखा

प्रायः चार वर्ष की आयु में बालक अपने हाथ की गति पर अधिकार करने लगता है। मानवाकृति में विशेष रूचि उत्पन्न हो जाती है। इसे वह निम्नांकित विधि से प्रस्तुत करता हैः– सिर को वृत्त से, आँखों को बिन्दुओं से, एक–एक रेखा द्वारा पैर। कभी–कभी धड़ हेतु एक वृत्त और भी बना दिया जाता है। बालक पैर अवश्य अंकित करते है चाहे शरीर अथवा हाथ बनाना भूल जाये।

2. वर्णनात्मक प्रतीकवाद

आयु 5–6 वर्ष। इस अवस्था में मानवाकृति को ठीक अनुपातों में अंकित करने का प्रयत्न किया जाता हैं। प्रायः एक भद्दे किस्म का प्रतीकात्मक सूत्र (Crude Symbolic

Schema) विकसित कर लिया जाता है, जो प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत सूझ–बूझ का घोतक होता है। यह सूत्र (स्कीमा) बहुत समय तक बालकों की कला को प्रभावित करता है।

3. वर्णनात्मक यथार्थवाद

आयु 7–8 वर्ष। बालक के चित्र इस अवस्था में भी दृश्य वस्तुओं से उतना सादृश्य नहीं रखते जितने तर्क द्वारा निर्मित होते है। बालक जो कुछ देखता है उसे अंकित न करके जो कुछ जानता है केवल वही अंकित करने का प्रयत्न करता है। व्यक्तिगत विशेषताओं के स्थान पर वह सामान्य विशेषताएँ ही चित्रित करता है। उसे जो कुछ भी रूचिपूर्ण लगता है उस सबको वह अभिव्यक्त करना चाहता है। यद्यपि वह पार्श्वगत चेहरा चित्रित करने का भी प्रयत्न करता है। तथापि परिप्रेक्ष्य, अपारदर्शिता, स्थितिजन्य–लघुता एवं बिन्दु से देखी जाने वाली विशेषताओं के प्रति वह उदासीन रहता है।

4. दृश्यात्मक यथार्थवाद

इस स्थिति में बालक स्मृति–चित्रण छोड़ कर वस्तु–नीरिक्षण का आरम्भ कर देता है। प्रायः 9–10 वर्ष की आयु में यह स्थिति होती है। इसके दो चरण है। प्रथम चरण में आकृतियों की लम्बाई और चौड़ाई का ही अंकन होता है। द्वितीय चरण में वस्तुओं की मोटाई अथवा गहराई का भी विचार आरम्भ ही जाता है छाया–प्रकाश एवं स्थितिजन्य–लघुता में भी रूचि उत्पन्न हो जाती है। दृश्य–चित्रण का भी आरम्भ हो जाता है।

प्रत्येक आलक अपनी रचनात्मक क्षमता के साथ जन्म लेता है तथा उसी के आधार पर कार्य करता है। 2 से 3 वर्ष की आयु तक बालक दृश्य कलाओं में संगीत, नृत्य तथा चित्रों के माध्यम से सीखना प्रारम्भ करता हैं। जब वह विद्यालय में प्रवेश करता है तो वहां वह विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से अपनी शारीरिक, मानसिक व सांवेगिक विकास में सहायक होता है। यह क्रियात्मक योग्यताएँ, कला के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिसके अन्तर्गत बालक मिट्टी के कार्य, पत्थर या धातु के टुकड़ों से घर बनाना, नृत्य करना, कोई वाद्य बजाना आदि के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति करने में सहायक होता है।

वर्तमान समय में विद्यालयों में नर्सरी एवं प्राथमिक स्तर पर कला को मुख्य विषय के रूप में न रखकर सहायक विषय अथवा क्राफ्ट विषय के रूप में शिक्षण हेतु प्रयोग किया जाता है। एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि कला सम्बन्धी क्रियाओं में बालकों की प्रगति अवस्था के अनुरूप होती है। एक 4 वर्ष का बालक अपने कार्य में उतनी निपुणता नहीं दिखा पाता, जितना कि एक 6 वर्ष का बालक दिखाता है। बालक की क्रियात्मक योग्यताओं का चित्रांकन से जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध में बाईबर ने खोज की है। उसके मतानुसार 3 या 4 वर्ष की अवस्था में बालक में इतनी क्रियात्मक योग्यता आ जाती है कि वे रेखाएँ आदि खींच सकता है। 5 से 6 वर्ष की आयु तक बालक वर्णानात्मक प्रतीकों का प्रयोग करना सीखता है, जो बालकों की व्यक्तिगत सूझ–बूझ को प्रदर्शित करता है। 7–8 वर्ष की आयु में बालक जो कुछ देखता है उसे

अंकित न करके जो कुछ जानता है केवल वही अंकित करने का प्रयत्न करता है तथा 9 से 10 वर्ष की आयु तक आते–आते बालक निरीक्षण कार्य आरम्भ कर देता है तथा दृश्यात्मक यथार्थवाद के गुण उसके चित्रण में आने लगते है।

इसके साथ ही एक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में प्रगतिशील विद्यालयों में कला शिक्षा पूर्णतः चित्रण द्वारा न प्रदान कर इसके स्थान पर कोलाज, क्राफ्ट, संगीत, नृत्य आदि के माध्यम से प्रदान की जाती है, जिसके द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास हो सके। इसके साथ ही वर्तमान समय में बालकों को कला शिक्षा विद्यालयों में, कक्षाओं तक ही सीमित न रखकर उन्हे प्राकृतिक वतावरण में कहानी–कथन, प्राकृतिक दृश्यों को दिखाकर आदि के माध्यम से शिक्षण कार्य किया जाने लगा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. गैरोला, वाचस्पति. (1963). भारतीय चित्रकला. मिश्रा प्रकाशनरू इलाहाबाद।
2. प्रसाद, देवी. (1999). शिक्षा का वाहन कला. नेशनल बुक ट्रस्टः दिल्ली।
3. सुखोम्लन्स्की, वसीली. (1986). बाल ह्रदय की गहराईयाँ. प्रगति प्रकाशनः मास्को।
4. तिवारी, रूप किशोर. (2016). प्रारम्भिक शिक्षा के नवीन प्रयास. बुक ओसियन पब्लिकेशनः वाराणसी।
5. Read, Herbert. (2021). Education Through Art. Hassell Street Press.
6. Voyla, Vilhem. (1994). Child Art. University of London press.
7. www.boycrayons.com.
8. https://thevirtualinstructor.com.
9. www.littlebigartists.com.
10. https://en.m.wikipedia.org.